ऊहापोह

चिर तक रहे प्रसुप्त घोर तर

तिमिराच्छन्न निशा में।

त्यागो अब तन्द्रा अरुणोदय

होता पूर्व दिशा में।

विस्मृत हों दुःस्वप्न विभावरि के

नव कनक विभा से।

जागृति आतुर नवस्फूर्तिमय

करने अमल प्रभा से ।।1।।

भूल गए थे विमल वारि में

शुभ विकास वारिज का।

स्वीकृत मन को दास्य चिरन्तन

रहा छली मनसिज का।

ध्यान न आया सदा सकण्टक

शोभा है पाटल की।

गिरि गह्वर में रहे भटकते

छोड़ राह समतल की ।।2।।

पर क्या इतना सुकर जागरण

मोह मयी तन्द्रा से।

रहे मुग्ध तारकित व्योम से

राका युक्त निशा से।

पाटल से सहस्र दल यात्रा

दुर्गम और बड़ी है।

मांसलता वपु कान्ति कनक द्युति

बाधा विपुल खड़ी है ।।3।।

कभी चाहता मुक्त गगन में

मन भी दुर्लभ विचरण।

लेता तत्क्षण खींच भूमि का

दुर्निवार आकर्षण।

कहती है मृत्तिका हमारा

ही मृण्मय पर ऋण है।

चिन्मय कहता मात्र प्रभा

अपनी भूतल सब तृण है ।।4।।

रजत हेम द्युति विकल नयन युत

असहज तरणि प्रभा से ।

जोड़ नहीं पाता उलूक वत

नव सम्बन्ध दिवा से ।

जाता है वय वीत स्वप्न

जागृति खींचातानी में।

प्रायः प्रकृति जीतती मन फिर

जुटता मनमानी में ।।5।।

मानसतल पर ऋचा वेद की

जैसे ही आती है।

ललना की छलना मृदु स्मृति पर

अनायास छाती है।

आ जाते हैं याद पुरुष जो

रहे निकृतिपर मुझको।

समता धारण और कठिनतर

हो जाता है क्षण को ।।6।।

आ जाते हैं याद अकारण

वैर भाव जो रखते।

और कृतघ्न आज भी दिखते

ईष्या युक्त निरखते।

अनयार्जित धन राशि बैठकर

गर्वित जन को पाता।

और सफलता से कुपात्र का

जुड़ते देखा नाता ।।7।।

देख चित्त अस्थिर हो जाता

शास्त्र धुंध में खोते।

लगता है फिर समय ज्ञान को

उद्यम सहित संजोते।

जो प्रसुप्त है जो जागृत है

जग में उभय सुखी हैं।

अर्ध जागरण में अस्थिर मति

नर ही यहाँ दुखी हैं ।।8।।

एक ओर समुदात्त सत्य है

शाश्वतता सार्थकता।

और दूसरी ओर मसृणता

कल्पित रस मादकता।

एक ओर आभा विराटतम

अक्षयता निर्मलता।

और इधर है क्षीयमान छवि

नवलाग्रह निर्भरता ।।9।।

है उस पार सहजता सुख

सातत्य स्फूर्ति निर्भयता।

यहां दुखान्त कथा है सबकी

श्रम आधिक्य विफलता।

आते सुखाभास के क्षण भी

यद्यपि रम्य मनोहर।

अचिर प्रकट पीछे से होता

दुख जो सौख्य सहोदर ।।10।।

अरुणिम छवि मृदु हास मसृणता

पटु भंगिमा सलोनी।

मौनामंत्रण रहने देते

किसको चिर तक मौनी।

यद्यपि ज्ञात छिपी मादकता

के भीतर दाहकता।

विकसित हो पाती न सुदृढ़तर

केवल गुण ग्राहकता ।।11।।

दब जाता यह बोध देह में

भी कुछ दिव्य छिपा है।

जिसके कारण ही झरती है

इससे कांति सिता है ।

चलते हैं कुछ दूर जहाँ गिरि

धवल शांति शीतलता।

कंचन भवन बुलाता पीछे

कुसुम बाण मन छलता ।।12।।

बने रहे कल्पित ज्ञानी हम

पर आई क्या समता।

क्या षड् रिपु जय हुई अहम् टूटा

छूटी क्या ममता।

वाग् वैभव का किया प्रदर्शन

भार ग्रंथ का ढोया।

जगे रहे मन बुद्धि रह गया

बोध उपेक्षित सोया ।।13।।

संशयवारणक्षम न हो सकी

श्रम से अर्जित विद्या।

शम उपलब्ध न होने देती

नर को आदि अविद्या।

सारी दृश्यावलि जगती की

सब सौंदर्य भुवन के।

कहते हैं ऋषि प्राणि मात्र के

स्पंदन हैं बस मन के ।।14।।

अतः तिरोहित हो जाता सब

मन की गति के थमते।

फिर अखंड चेतन रहता है

ज्ञानी जिसमे रमते।

जिज्ञासा शिक्षा साधन फिर

ज्ञान मोक्ष का क्रम है।

इसमें व्यतिक्रम अहंकार पोषण

वाणी छल भ्रम है ।।15।।

संशय कोई नहीं ईश की

शाश्वत प्रभु सत्ता पर।

पर संदेह स्वयं की दृढ़ता

मति की गुणवत्ता पर।

जब तक मान मनीषा बैठी

जग में कुछ सार्थकता।

तब तक कहाँ विराग न चिंतन

दौड़ों से मन थकता ।।16।।

कौन प्रकृति जय क्षम हो पाया

केवल अपने बल से।

कौन लक्ष्य तक पहुंचा विरहित

ईश कृपा संबल से।

ऊहापोह ग्रस्त मानस यदि

मांगे परमपिता से।

कृपा तभी संभव मिलना है

अस्तहीन सविता से ।।17।।

यद्यपि लूटीं चिर तक निधियां

दुर्जय शत्रु निकर ने।

बचा लिये कुछ मणिमुक्तागण

बुध जन बुद्धि प्रखर ने।

बस इतना संतोष कि इस मणि

द्युति का हमें सहारा।

वैसे तो यह जगत तिमिर में

फिरता मारा मारा ।।18।।

शुभ कामना उन्हें जो हरि के

दर्शनेच्छु कण कण में।

मेरी मति तो रंग बदलती

रहती है क्षण क्षण में।

शुभ कामना निरत जो व्यापक

अपने मानस रण में।

शुभ कामना भेदक्षम जो हैं

कल्प लता में तृण में ।।19।।

पं. शिव कुमार मिश्र

31.12.2023

कानपुर